साहित्य-सरोवर

(संस्कृत प्रथमा परीक्षा के परीक्षार्थियों के लिए)

सम्पादक—

पं० बुद्धिनाथ शर्मा

सीनियर हिन्दी टीचर

सेन्ट्जौन्स हाई-स्कूल, आगरा

—:*:—

प्रकाशक

रामनारायण लाल

पब्लिशर और बुकसेलर

इलाहाबाद

[मूल्य ।=)॥
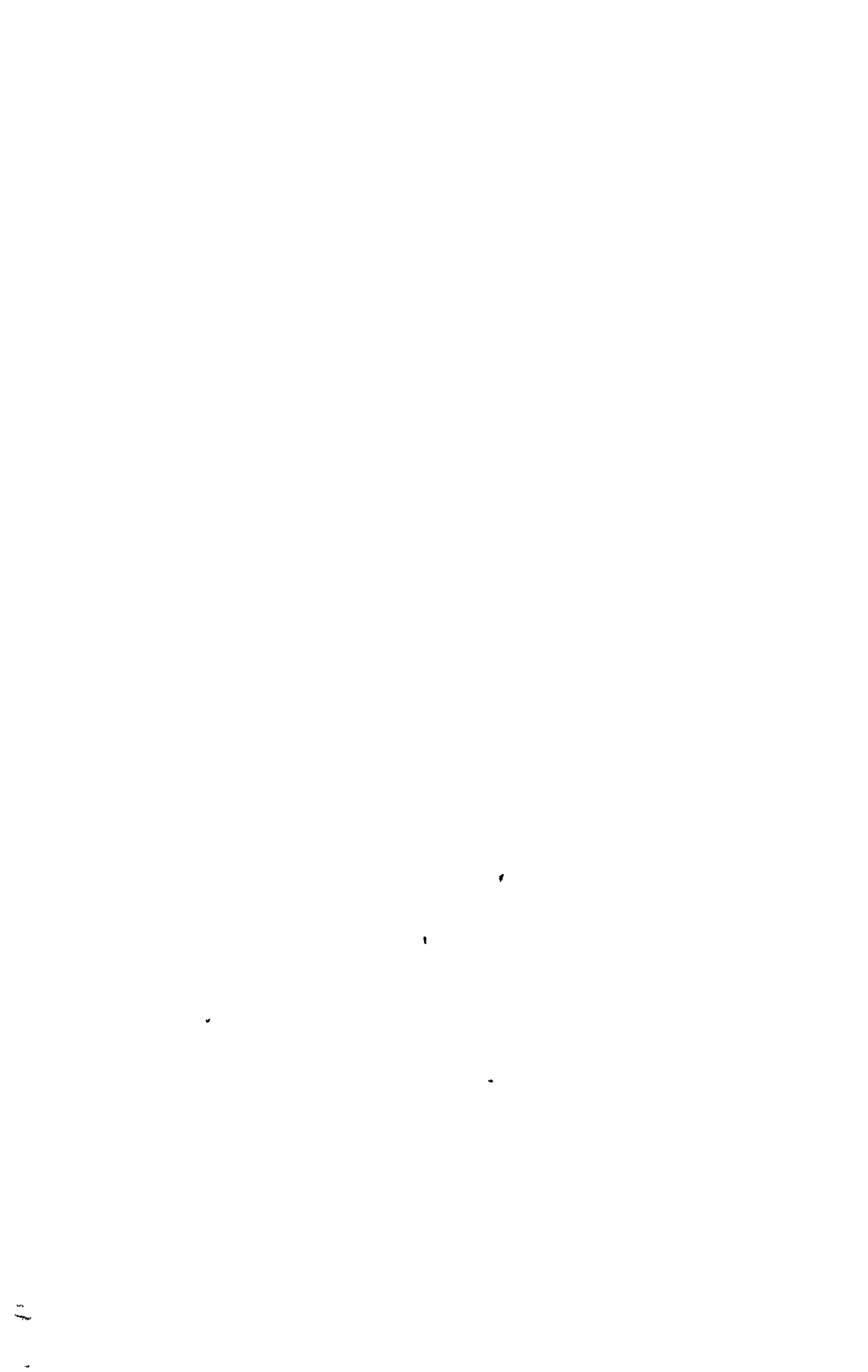
प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक 'गवर्नमेंट संस्कृत कालिज, बनारस' की प्रथमा परीक्षा में प्रविष्ट होने वाले विद्यार्थियों के लिए लिखी गई है। इसमें विद्यार्थियों की योग्यता का ध्यान रखते हुए हर एक हिन्दी-साहित्य के प्रसिद्ध तथा गण्यमात्र लेखकों तथा कवियों की गद्य-पद्यात्मक रचनाएँ चुनकर रक्खी हैं और साथ ही साथ प्रत्येक पाठ के प्रारम्भ में परिचय भी दिया गया है, जिससे विद्यार्थी हिन्दी-साहित्य क्षेत्र के लेखकों तथा कवियों से परिचित हो जायँ।

संकलन में ऐसे पाठों का चुनाव किया गया है, जो नैतिक, मानसिक और शारीरिक शक्तियों का विकास करते हुए हिन्दी-साहित्य में अभिरुचि और लगन उत्पन्न करें। स्थान-स्थान पर संस्कृत कवियों के उद्धरणों को भी स्थान दिया गया है। पाठ अश्लील, धार्मिक तथा राजनैतिक आक्षेपों से रहित हैं। इस संकलन के प्रत्येक पाठ के अन्त में 'उद्धरणी' ऐसी दी गई है कि यदि छात्रगण मनोयोग पूर्वक 'उद्धरणियों' को करेंगे तो उन पाठों का अभिप्राय समझने के अतिरिक्त संस्कृत शब्द, शब्दों की व्युत्पत्ति तथा उनके मूल रूप का भी ज्ञान प्राप्त हो जायेगा।

पुस्तक की भाषा-शैली सरल तथा सरस है। पुस्तक की छपाई पर पूर्ण ध्यान रक्खा गया है। पुस्तक के विषय में अधिक कहना 'अपने मुँह मियाँ मिट्ठू' बनना है। मैंने लगभग ६० पुस्तकें लिखकर प्रस्तुत पुस्तक को सम्पादित करने का प्रयास किया है। पुस्तक में जिन विद्वान कवियों तथा लेखकों की रचनाओं का समावेश है, मैं उनका अत्यन्त आभारी हूँ। संकलन में मैंने विचारपूर्वक यथासम्भव संस्कृत कवियों के उद्धरणों को स्थान दिया है, जिससे कि लेखों की सुन्दरता और अधिक हो गई है। आशा है यह संकलन विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

—सम्पादक

विषय-सूची

प्रार्थना

१—प्रार्थना

[पं० हरिशंकर शर्मा 'कविरत्न]

[आप पंडित नाथूराम शंकर जी के सुपुत्र हैं। आपका जन्म सम्वत् १९४८ हरदुआगंज ज़िला अलीगढ़ में हुआ। आप खड़ी बोली के सुकवि और श्रेष्ठ गद्य लेखक हैं। 'आर्यमित्र' नामक समाचार पत्र ने आपके सम्पादकत्व में अच्छी उन्नति प्राप्त की थी। पश्चात् आपने 'साधना' नामक मासिक पत्रिका का भी कुछ दिनों तक सम्पादन किया। आपकी भाषा शुद्ध और बालोपयोगी होती है। आपने बहुत-सी कविताएँ की हैं।

दयामय, दीनबन्धु, भगवान;
जगत के नायक, न्याय-निधान।
देख लो अब भारत की ओर;
मिटा दो सारे संकट घोर॥ १॥
विविध मत-माया का हो अन्त;
ज्ञान, गुण, गौरव बढ़ें, अनन्त।
मिले हमें सर्वत्र सम्मान;
न कायरपन का रहे निशान॥ २॥

वीर विदुषी, बालक, विद्वान,
धनी, निर्धन सब एक समान।
हृदय में रक्खें अमित उमंग;
परस्पर मिलें प्रेम के संग ॥ ३ ॥

शिल्प, वाणिज्य बढ़े उद्योग;
रुचे सब को, हो सुलभ सुयोग।
न भूखे रोवें दीन किसान;
न मद में अन्धे हों धनवान ॥ ४ ॥

विवेकी विज्ञ विचार प्रचार;
करें, हों नूतन आविष्कार।
न कोई शेष रहे प्रतिबंध;
करें सब अपने आप प्रबन्ध ॥ ५ ॥

रहे स्वच्छन्द न छोड़ें धर्म;
करें सब लोग सदैव सुकर्म।
प्रतापी पौरुष पकड़े हाथ;
सफलता देवी का हो साथ ॥ ६ ॥

उद्धरणी

१—जगत का नायक कौन है ?

२—इस पाठ में भगवान् से किन-किन बातों की प्रार्थना की गई है ?

३—विवेकी और विज्ञ तथा विदुषी और विद्वान् में क्या अन्तर है ?

४—न्याय निधान, मत-माया और सफलता के अर्थ कर इन शब्दों का वाक्यों में अलग-अलग प्रयोग भी करो।

५—'सफलता' शब्द में कौन संज्ञा है और यह संज्ञा शब्द किस शब्द से बनी है।

६—उक्त पद्य में जो विशेषण शब्द हो उन्हें ढूँढ़ो।

२—नाग और श्रीकृष्ण

[पं० लल्लूलाल जी]

[आपका जीवन काल संवत् १८२० से १८९२ था। आप आगरे के रहनेवाले गुजराती ब्राह्मण थे। आप वर्तमान हिन्दी गद्य के जन्म-दाता माने जाते हैं। आपकी लिखित पुस्तकें बहुत-सी हैं, पर आपकी पुस्तकों में सिंहासनबत्तीसी, बैताल पचीसी, शकुन्तला नाटक, राजनीति, प्रेमसागर आदि मुख्य हैं। यह पाठ 'प्रेम सागर' से लिया गया है। यह सवा सौ वर्ष पुरानी हिन्दी का एक नमूना है। पाठ की भाषा में मधुरता है और वर्णन शैली भी मनोहर है।]

श्री शुकदेव जी बोले—महाराज, ऐसे सब की रक्षा कर श्रीकृष्ण ग्वालबालों के साथ गेंदतड़ी खेलने लगे और जहाँ काली था तहाँ ४ कोस तक जमुना का जल विष से खौलता था, कोई पशु पक्षी वहाँ न जा सकता, जो भूलकर जाता सो लपट से झुलस दह में गिर पड़ता, और तीर में कोई रूख भी नहीं उपजता। एक अविनासी कदम तट पर था, सोई था। राजा ने पूछा—महाराज, वह कदम कैसे बचा ? मुनि बोले—

किसी समय अमृत चोंच में लिये गरुड़ जिस पेड़ पर आ बैठा था तिसके मुँह से एक बूँद गिरी थी इसीलिये वह रूख बचा।

इतनी कथा सुनाय श्री शुकदेव जी ने राजा से कहा— महाराज, श्रीकृष्णचन्द्र जी काली का मारना जी में ठान गेंद खेलते-खेलते कदम पर जा चढ़े और जो नीचे से सखा ने गेंद चलाई तो जमुना में गिरी, तिस के साथ श्रीकृष्ण भी कूदे। इनके कूदने का शब्द आँख से सुनकर वह लगा विष उगलने और अतिसम फुँकारें मार-मार कहने, कि ऐसा कौन है जो अब लग दह में जीता है। कहीं अखैवृक्ष तो मेरा तेज न सहि के टूट पड़ा, कै कोई बड़ा पशु पक्षी आया है जो अब तक जल में जीता है।

यों कह वह अपने सब फनों से विष उगलता था और श्रीकृष्ण पैरते फिरते थे। तिस समय सखा ग-रो हाथ पसार-पसार पुकारते थे। गायें मुँह बाये चारों ओर राँभती हूँकती फिरती थीं। ग्वाल न्यारे ही कहते थे, स्याम वेग निकल आइये, नहीं तुम बिन घर जाय हम क्या उत्तर देंगे। यों तो यहाँ दुखित हो यों कह रहे थे, इसमें किसी ने वृन्दावन में जा सुनाया कि श्रीकृष्ण कालीदह में कूद पड़े। यह सुन रोहणी जसोदा और नन्द गोपी गोप समेत रोते-पीटते उठ धाये और सबके सब गिरते-पड़ते कालीदह आये। वहाँ श्रीकृष्ण को न देख व्याकुल हो नन्दरानी दरदानी गिरन चलीं पानी में तब गोपियों ने बीच

ही जा पकड़ा और ग्वालबाल नन्द जी को थामे ऐसे कह रहे थे ।

छाँड़ महाबन या बन आये । तोहूँ दैत्यनि अधिक सताये ।
बहुत कुशल असुरन ते परीं । अब क्यों दह से निकसैं हरी ।

कि इतने में पीछे से बलदेव जी वहां आये और सब वृजवासियों को समझाकर बोले—अभी आवेंगे कृष्ण अविनासी तुम काहे को होते हो उदासी ।

आज साथ आयो मैं नाहीं ।
मो बिन हरि पैठे दह माहीं ॥

इतनी कथा कह श्री शुकदेव जी राजा परीक्षित से कहने लगे कि महाराज, इधर तो बलराम जी सब को यों आशा भरोसा देते थे और उधर श्रीकृष्ण जी पैर कर उसके पास गये तो वह इनके सारे शरीर से लिपट गया । तब श्रीकृष्ण ऐसे मोटे हुए कि विसे छोड़ते ही बन आया । फिर जो-जो वह फुँकारे मार-मार इन पर फन चलाता था, तो-तो ये अपने को बचाते थे । निदान वृजवासियों को अति दुखित जान श्रीकृष्ण एकाएकी उचक उसके सिर पर जा चढ़े ।

तीन लोक को बोझ लै भारी भये मुरारि ।
फन-फन पर नाचत फिरैं बाजैं पग पट तारि ॥

तब तो मारे बोझ के काली मरने लगा और फन पटक उसने जीभें निकाल दीं । तिनसे लोहू की धारें बह चलीं । जब विष और बल का गर्व गया तब उसने मन में जाना कि आदि

पौरुष ने औतार लिया, नहीं इतनी किसमें सामर्थ है जो मेरे विष से बचे। यह समझ जीव की आस तज शिथिल हो रहा, तब नागपत्नी ने आय हाथ जोड़ सिर नवाय विनती कर श्रीकृष्ण से कहा—महाराज, आपने भला किया जो इस दुखदायी अति अभिमानी का गर्व चूर किया। अब इसके भाग जागे, जो तुम्हारा दर्शन पाया। जिन चरणों को ब्रह्मा आदि सब देवता जप तप कर ध्यावते है, सोई पद काली के सीस पर विराजते हैं।

इतना कह फिर बोली—महाराज, मुझ पर दयाकर इसे छोड़ दीजै, नहीं तो इसके साथ मुझे भी वध कीजे क्योंकि स्वामी बिन स्त्री को मरना ही भला है और जो विचारिये तो इसका भी कुछ दोष नहीं; यह जाति स्वभाव है कि दूध पिलाये विष बढ़े।

इतनी बात नागपत्नी की सुन श्रीकृष्णचन्द्र उस पर से उतर पड़े। तब प्रणाम कर हाथ जोड़ काली बोला—नाथ, मेरा अपराध क्षमा कीजै, मैंने अनजाने आप पर फन चलाये। हम अधम जाति सर्प, हमें इतना ज्ञान कहाँ जो तुम्हें पहचानें। श्रीकृष्ण बोले—जो हुआ सो हुआ पर अब तुम यहाँ न रहो, समेत कुटुम्ब रौनक द्वीप में जा बसो।

यह सुन काली ने डरते काँपते कहा—कृपानाथ ! वहाँ जाऊँ तो गरुड़ मुझे खा जायगा जिसी के भय से मैं यहाँ भाग

आया हूँ। श्रीकृष्ण बोले—अब तू निर्भय चला जा, हमारे पद के चिन्ह तेरे सिर पर देख तुझ से कोई न बोलेगा। ऐसे कह श्रीकृष्णचन्द्र ने तिसी समय गरुड़ को बुलाय काली के मन का भय मिटाय दिया। तब काली ने धूप, दीप, नैवेद्य समेत विधि से पूजा कर बहुत सी भेंट श्रीकृष्ण के आगे धर कर हाथ जोड़ विनती कर विदा होय कहा—

चार घरी नाचे मो माथा।
यह मन प्रीति राखियो नाथा॥

यों कह दण्डवत कर काली तो कुटुम्ब समेत रौनक दीप को गया और श्रीकृष्णचन्द्र जल से बाहर आये।

उद्धरणी

१—श्री शुकदेव जी ने राजा परीक्षित से काली के विषय में क्या बात कही?

२—श्रीकृष्ण जी ने नाग को किस भाँति नाथा? संक्षेप में वर्णन करो।

३—अमृत मे क्या क्या गुण हैं?

४—नीचे के मुहावरों का अर्थ स्पष्ट करो:—

विष उगलना, तेज सहना, हाथ पसारना।

५—नीचे के शब्दों के शुद्ध संस्कृत शब्द बताओ:—

पंछी, दूध, गेंद, सामर्थ।

६—नागपत्नी ने भगवान् कृष्ण से क्या प्रार्थना की थी?

३—हीरा और कोयला

(श्री० राय कृष्णदास)

[आप हिन्दी के सुप्रसिद्ध लेखक, बनारस के निवासी हैं। आपने कला-पूर्ण लेखों के लिखने में अच्छी ख्याति प्राप्त की है। आप बड़े भावुक और अच्छे कलाकार भी हैं। आपकी 'संलाप' और 'भावुक' पुस्तकें अधिक प्रसिद्ध हैं। आपने निम्न पाठ में 'हीरा और कोयला की बात-चीत का अच्छा वर्णन किया है। वर्णन शैली सुन्दर, मधुर और कवित्वपूर्ण है।]

हीरा

मेरे पास तू कैसे?

कोयला

क्यों? तेरा और मेरा तो जन्म का साथ है?

हीरा

"जन्म का साथ है" चल हट, दूर हो यहाँ से।

कोयला

क्या तू मेरी बात झूँठ मानता है? अरे, हम सगे भाई हैं।

हीरा

क्या कहता है, चोरी और सीनाजोरी। अभी तक जन्म का साथी बनता था, अब भाई बनने लगा। मैं गोरा चिट्टा, तू काला कलूटा। भला कौन कहेगा कि तू मेरा भाई है।

कोयला

अरे मैं तेरा सगा ही नहीं, सगा बड़ा भाई हूँ। एक ही पेट से पहले मेरा जन्म होता है तब तेरा।

हीरा

तभी न, हम दोनों एक से हैं।

कोयला

यह तो ईश्वरी देन है। क्या देव और दानव भाई नहीं ?

हीरा

सोलहो आने सच ! लेकिन दानव तू ही हुआ, क्योंकि तू मेरा बड़ा बनता है।

कोयला

कौन दानव है और कौन देव, यह तो कर्म से विदित होगा। अपने मुँह से कहने की क्या आवश्यकता है। फिर; देवता के अनुयायी ही असुरों की इतनी निन्दा करते आये हैं। यदि देखा जाय तो बेचारे असुर सदा ही देवताओं से छले गये हैं।

हीरा

अच्छा रहने दे अपने पास अपनी पंडिताई। आ हम अपनी-अपनी करनी तो देख लें, कि तू मेरा बड़ा भाई होने योग्य है कि नहीं।

कोयला

ठीक, बहुत ठीक, तुझे ही अपनी बड़ाई का बड़ा घमंड है; तू ही अपने गुन कहे चल।

हीरा

बनता तो है मेरा सहोदर, पर तुझे मेरे गुण तक विदित नहीं। न सही, पर क्या तेरी आँखें भी फूट गई हैं। पहले तो मेरा रूप ही देख। यदि मुझ में और गुण न भी हों तो इतना ही मेरी बड़ाई के लिये बहुत है—मैं जहाँ रहता हूँ सूरज की तरह चमकता हूँ। रंग बिरंगी किरनें मुझमें से निकला करती हैं। देखने वालों की आँखें खुल जाती हैं। तबियत हरी हो जाती है।

कोयला

क्या कहना है तू तो एक कंकड़ जैसा खान के बाहर आता है; वह तो हीरा-तरास मुझे यह कृत्रिम रूप देता है। तेरा अपना प्रकाश कहाँ? तू तो समस्त वर्णों और प्रकाशों से शून्य है। तुझमें जैसी छाया और आभा पड़ी; वैसा ही बन जाता है—गंगा गये, गंगादास; जमुना गये, जमुनादास यदि तू कहीं अँधेरे में पड़ा रहे तो लोगों की ठोकरें—

हीरा

ज़रा ही में गर्म हो गया पूरी बात तो सुन लेता। सुन—मैं राजराजेश्वरों के सिर पर बैठता हूँ। देवताओं का मुकुट सुशोभित करता हूँ। सुन्दरियों का आभूषण बनता हूँ।

कोयला

हाँ, तू अपने कारण सम्राटों के सिर कटाता है। बड़े-बड़े राज्य तहस-नहस करा डालता है। मनुष्य को इस धोखे में डालता है कि तुझे देव मुकट में लगाकर वह देवता को अपने वश कर सकता है। तू सुन्दरियों की सहज रमणीयता पर भी अपनी कृत्रिमता से पानी फेरता है।

हीरा

मैं बड़े-बड़े राजकोषों में कितनी रक्षा से रक्खा जाता हूँ। मेरे लिये पहरा चौकी लगती है। तेरे जैसे गलियों में मारा-मारा नहीं फिरता। बड़ी-बड़ी निधियों से मेरा विनिमय होता है। मैं टके-सेर नहीं बिकता। क्योंकि **"रत्नं महार्घं भुवि"**

कोयला

क्या खूब नित्य बन्दी बनकर सौ-सौ तालों में बन्द होकर सोने की काँटेदार बेड़ियों में जाकर तू अपने को बड़ा समझे तो समझ। तेरी बुद्धि की बलिहारी है। मैं तो स्वतन्त्रता-पूर्वक दर-दर घूमना ही जीवन की सार्थकता समझता हूँ। और तेरा मूल्य तुझे याद है कि मैं बता दूँ; तेरा सच्चा मोल, पंजाब-केशरी रणजीतसिंह ने आँका—पाँच जूतियाँ। सुना तूने?

हीरा

रहने दे छोटे मुँह बड़ी बात, क्योंकि **"अर्धोघटो घोषमुपैति नूनम्"**। तू सदा जलने वाला दूसरे का उत्कर्ष कब देख सकता है।

कोयला

हां मैं जलता हूँ, किन्तु दूसरे के लिये—मैं अपने कारण दूसरों को तो नहीं जलाता। मैं जल कर ग़रीबों की भी ज़रूरत पूरी करता हूँ—लोगों को विभूति देता हूँ।

हीरा

हां, मेरे ही विनिमय के लिये तू इन्हें धनिक करता है।

कोयला

क्योंकि मैं तो छोटा भाई समझ कर तेरी प्रतिष्ठा ही चाहता हूँ। पर तू ठहरा वज्र। तुझे इसका ध्यान कहां।

हीरा

रहने दे अपनी उदारता। मैं इन बातों में आकर अपना मार्ग नहीं छोड़ने का।

कोयला

मैं तुझे यही तो बताना चाहता हूँ—तेरे दिन अब पूरे हो चले—संसार शीघ्र ही वह दिन देखने वाला है जब तेरी पूछ न रह जायगी। वह शीघ्र ही कृत्रिम आभूषणों के बदले सच्चे आभूषण अपनावेगा। वह ग़रीबी अमीरी का ऊबड़-खाबड़ और टेढा-मेढा मार्ग छोड़कर एक सरल समतल सीधे मार्ग से चलने वाला है।

हीरा

देखना है कि मनुष्यता कब सच्चे आभूषण अपनाती है।

देखना है कि लोकयात्रा का वह सीधा मार्ग कब बनता है। यदि वैसा सीधा मार्ग बन भी गया तो उसके सीधेपन के कारण उसकी लम्बाई देखकर ही मनुष्य हार जायगा। ज़ो हो—

कोयला

नहीं, वह सीधापन उसका उत्साह दूना कर देगा क्योंकि यात्रा का निर्दिष्ट स्थान उसे सामने ही दीख पड़ने लगेगा।

हीरा

जब वह समय आवेगा तब देखा जायेगा। मैं बीच ही में अपना पद त्याग क्यों करूँ। क्या सहज ही मैंने उसे पाया है? तब तक के लिए तुझे इस बिना माँगी सलाह के लिये हृदय से धन्यवाद।

कोयला

अच्छा मेरे अनुज! मैं जी से तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि ईश्वर तुझे सुबुद्धि दे।

हीरा

आह! क्या दैव-गति ऐसी ही है कि मैं तेरा अनुज होऊँ और तू—कोयला मेरा अग्रज।

कोयला

हाँ, यह एक घटना है जिसे हम मिटा नहीं सकते।

तो क्या मनुष्य के पूर्वज बन्दर नहीं*

कोयला

यह तो तेरे जैसे पारदर्शी ही जानें, मैं अन्ध-हृदय इन गूढ़ विषयों को क्या समझ सकूँ।

हीरा

चाहे जैसे भी हो तूने अपने हृदय का कालापन ही स्वीकार किया। तेरी इस हार के आगे मैं अपना सिर झुकाता हूँ।

कोयला

और मैं भी अपने उसी आन्तरिक अंधकार के जो आलोक का कारण है—तुझे फिर असीसता हूँ कि ईश्वर तुझे सुबुद्धि दे।

उद्धरणी

१—हीरे और कोयले की बातचीत को अपनी भाषा में सूक्ष्म रूप में लिखो।

२—चोरी और सीनाज़ोरी, तबियत हरी होना, हृदय का कालापन, गङ्गा गये गङ्गादास, जमुना गये जमुनादास—इन कहावतों को पूर्णरूप से समझाओ।

३—इस पाठ की बातचीत को क्या तुम पसन्द करते हो और क्यों?

४—'अच्छा मेरे अनुज...सुबुद्धि दे' का भाव बताओ।

---

*एक पाश्चात्य विद्वान् डारविन का सिद्धान्त है कि मनुष्य जाति की उत्पत्ति बन्दरों से हुई है।

८—कर्ण की सहिष्णुता

[यह लेख 'भारतीय नीति कथा से उद्धृत किया गया है। इस लेख में कर्ण की सहिष्णुता पर बड़ा सुन्दर प्रकाश डाला गया है। साथ ही साथ कर्ण की गुरुभक्ति का भी श्रेष्ठ विवरण दिखाया गया है। लेख की भाषा सुन्दर और शुद्ध है।]

अर्जुन की अस्त्र विद्या में निपुणता देखकर कर्ण उनकी बराबरी करने के लिये सदैव प्राणपण से चेष्टा किया करते थे। एक दिन जब द्रोणाचार्य जी निर्जनस्थान में बैठे हुए थे, उस समय कर्ण ने मौका पाकर उनसे मन्त्र सहित ब्रह्मास्त्र पाने के लिये प्रार्थना की। गुरु की अर्जुन पर अधिक प्रीति रहती थी। अतएव उन्होंने अर्जुन सरीखे उपयुक्त शिष्य को ब्रह्मास्त्र से वंचित रखना उचित नहीं समझा। दूसरे वे जानते थे कि कर्ण अर्जुन से शत्रुता रखता है वह ब्रह्मास्त्र पाकर अर्जुन का अनिष्ट किये बिना न रहेगा इत्यादि बातों को सोचकर उन्होंने उसे ब्रह्मास्त्र देने से इन्कार कर दिया। कर्ण निराश होकर लौट आया। उसने सोचा अब कोई ऐसी तदबीर करनी चाहिए जिससे मैं अस्त्र-शस्त्र विद्या में अर्जुन से किसी अंश में कम न रहने पाऊँ। सोचते-सोचते उसे एक दिन परशुराम जी की याद आई और वह उसी समय महेन्द्राचल पर्वत की ओर रवाना हो गया। वहाँ पहुँच कर उसने परम तेजस्वी महर्षि परशुराम जी के आश्रम में जाकर उनको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। महर्षि परशु-

राम जी ने एक बलिष्ठ और तेजवान् युवा पुरुष को अत्यन्त नम्रता से सिर झुकाये खड़ा देख कर कहा—"वत्स! तू एक उच्च कुलोत्पन्न जान पड़ता है, मैं तुझ से प्रसन्न हूँ; कह किस लिए आया है?"

कर्ण ने अपना मतलब गाँठने के लिए अपने को ब्राह्मण पुत्र कह के उनसे वही अस्त्र पाने की इच्छा प्रकट की, क्योंकि कहा भी है—"स्वार्थी दोषं न पश्यति" परशुराम जी ने उसे हर्ष पूर्वक अपना शिष्य बना लिया। कर्ण परशुराम जी की खूब मन लगा कर सेवा करने लगा। गुरु भी शिष्य की सेवा-शुश्रूषा और उसकी युद्ध विद्या में निपुणता देखकर उससे सदैव प्रसन्न रहा करते थे। महर्षि परशुराम जी ने कर्ण को कई अस्त्र-शस्त्र प्रदान करके उसे खूब सुरक्षित बना दिया, और अन्त में मंत्र सहित ब्रह्मास्त्र देकर उसकी एक बड़ी अभिलाषा को पूर्ण कर दिया।

एक दिन सन्ध्या वन्दन कर चुकने पर महर्षि परशुराम जी कर्ण की गोद में सिर रखकर सो रहे थे, इतने में किसी एक रक्त पीने वाले भयंकर कीट ने, जिस जंघा पर परशुराम जी सिर रखकर सो रहे थे, काटना प्रारम्भ किया। वह कीड़ा बड़ा तेज़ था, उसके काटने से कर्ण को असह्य पीड़ा होने लगी; परन्तु यह सोचकर कि गुरु सो रहे हैं, कहीं उनकी निद्रा भंग न हो जाय, इस भय से उस भयंकर कष्ट को सहता रहा।

उसके काटने से, जंघा से रक्त की धारा बह निकली। उसके स्पर्श से गुरु की निद्रा भंग हो गई, और उस रक्त की धारा को देखकर परशुराम जी ने आश्चर्य से कहा।

"अरे! यह क्या? तूने मुझे अपवित्र कर दिया, यह क्या बात है, साफ़-साफ़ कह?"

कर्ण ने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। परशुराम जी ने उस भयंकर कीड़े के काटने की असह्य पीड़ा को सहन करते रहने की वार्त्ता सुनकर क्रोध से अधीर हो कहा—"हे मूर्ख! सच बतला तू कौन है। ब्राह्मण जाति ऐसी दारुण पीड़ा को नहीं सहन कर सकती? अतएव तू ब्राह्मण नहीं हो सकता। अपना सच्चा परिचय शीघ्र दे, नहीं तो अभी शाप देता हूँ।" कर्ण ने भय से थर-थर काँपते हुए दोनो हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"हे महाराज! मेरे अपराध को क्षमा कीजिए, मैं वास्तव में अपराधी हूँ। अर्जुन को युद्ध में पराजित करने की अभिलाषा से मैं आपका शिष्य हुआ था। मैं सचमुच ब्राह्मण नहीं, सूत पुत्र हूँ, मेरा नाम कर्ण है।" ऐसा कह कर गुरु के चरणों पर गिर पड़ा।

परशुराम जी ने कहा—"हे कर्ण! तुमने हमारी ख़ूब जी लगाकर सेवा की है, तुम्हारी ऐसी अविचल गुरु-भक्ति और दारुण कष्ट सहिष्णुता को देखकर मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। मेरे आशीर्वाद से कोई क्षत्रिय तेरे समान युद्ध न कर सकेगा। किन्तु तुमने ब्राह्मण पुत्र कह के मुझ से धोखे से ब्रह्मास्त्र लिया है, इस-

लिए वह तेरे संकट के समय काम न आवेगा। अच्छा, अब तेरे यहाँ रहने की आवश्यकता नहीं है, तू शीघ्र यहाँ से चला जा।" परशुराम जी को प्रणाम करके कर्ण हस्तिनापुर को लौट आया।

कर्ण की कष्ट-सहिष्णुता अवश्य सराहनीय है। गुरु की निद्रा भंग होने के भय से दारुण पीड़ा को सहन करके उसने क्षत्रियोचित काम किया। परन्तु गुरु से छल पूर्वक ब्रह्मास्त्र प्राप्त करने की क्रिया को भी कोई अच्छा नहीं कह सकता। महर्षि परशुराम के शाप के कारण वह ब्रह्मास्त्र कर्ण के काम न आया, अन्तिम समय में वह उसकी याद ही भूल गया और शत्रु के हाथ से मारा गया। भले या बुरे किसी काम की सिद्धि के लिए प्रवंचना करना कभी प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। यत :—

"न छद्मना पद्म-निकेतनां लभेत्"

उद्धरणी

१—कर्ण ने पशुराम जी से ब्रह्मास्त्र लेने के लिए अपना क्या परिचय दिया था ?

२—इस पाठ का सारांश अपनी बोली में लिखो।

३—निम्न वाक्यों को शुद्ध करो और उनकी अशुद्धि का कारण भी बताओः—

क—कर्ण ने सारी वृत्तान्त कह सुनाई।

ख—ऐसी वृत्तान्त कह गुरु के चरणों पर गिर पड़े।

४— परशुराम जी ने कैसे जाना कि कर्ण ब्राह्मण नहीं ?

५—कर्ण के विषय मे क्या जानते हो ?

५—ब्रह्मर्षि दधीचि

(श्री रामचरित उपाध्याय)

[आपका जन्म संवत् १९२९ है। आप आज़मगढ़ के महाराजपुर नामक स्थान में अधिक रहते हैं। आप हिन्दी के श्रेष्ठ कवि हैं। आपकी रचना अत्यन्त सुन्दर और भावपूर्ण होती है। आपने बहुत सी पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें रामचरित चिंतामणि, सूक्ति मुक्तावली और रामचरित चन्द्रिका, अधिक प्रसिद्ध हैं। आप बड़े उदार प्रकृति के व्यक्ति हैं।]

(१)

असुरों का अध्यक्ष बना वृत्रासुर ज्योंही,
उनका अत्याचार बढ़ा जग भर में त्योंही।
गो, भूसुर, सुर सभी लगे बहु-विधि दुख पाने,
भूर्भुवः स्वर्लोक लगे भय से थर्राने॥

(२)

अत्यधीन हो गये चराचर वृत्रासुर के,
हरण हुए अधिकार अखिल आखंडल पुर के।
चूँ भी जिसने किया दंड उसने ही पाया,
ऐसा ही था गया न्याय का जाल बिछाया॥

(३)

बलि-पूजा, मख-होम सभी रुक गये मही पर,
रहा धर्म का नाम तनिक भी नहीं कहीं पर।

तीर्थों में भी लगी विविध हिंसायें होने,
दुःख दैन्य छा गये विश्व के कोने कोने ॥

(४)

जब डगमग हो चला देव-शासन का आसन,
सुन न सका जब इन्द्र विश्व का करुणा क्रन्दन ।
तुरत पहुँच तब गया विष्णु के निकट सुरेश्वर,
हरि ने उसे दधीचि-शरण में भेजा सत्वर ॥

(५)

मुनि दधीचि के धाम सचीपति पहुँचा ज्योंही,
मानो रुक सी गई हृदय गति उसकी त्योंही ।
द्युति दीपक की क्षीण पड़े रवि-सनमुख जैसे,
मुनि के सन्मुख पड़ा इन्द्र मुख फीका वैसे ॥

(६)

सभय सप्रेम सुरेश काँपता मीठे स्वर से,
करके दण्ड प्रणाम तुरत बोला मुनिवर से ।
आया हूँ मैं शरण विप्र-वर रक्षा करिए,
असुरों से हैं दुखी सुरों के दुख को हरिए ॥

(७)

भू देवों के हाथ देव पूजे जाते हैं,
विप्रों ही के हाथ हव्य सब सुर पाते हैं ।

देव ! आप हो देव वृन्द के आश्रय-दाता,
स्वर्ग-विधाता देव आप देवों के त्राता ॥

(८)

विभु के मुख से प्रथम आप उत्पन्न हुए हो,
सब विद्याओं-युक्त आप व्युत्पन्न हुए हो।
ज्येष्ठ श्रेष्ठ इसलिए आपही इस भू पर हैं,
जग उत्तर दायित्व आपही के ऊपर है॥

(९)

वेदोद्धारक विप्र, विप्र हैं, धर्मोद्धारक,
ज्ञान प्रचारक विप्र, विप्र हैं देश सुधारक।
दैशिक व्रत नेतृत्व विप्र हैं, करते आये,
भावी सुख के लिए दुख हैं सहते आये॥

(१०)

बोले विहँस दधीचि, न इतनी करो बड़ाई,
क्या असुरों के साथ छिड़ी है कहीं लड़ाई।
सुर सेना है साथ हाथ में वज्र तुम्हारे,
फिर कैसे सुरराज चले हो निकट हमारे॥

(११)

देश-धर्म के लिए प्राण भी मेरे तृण सम,
इन्द्र समझते विप्र न प्राणों से हैं प्रण कम।

कौन काम है उसे करूँ मैं झटपट कहिए,

करिए असुर विनाश न हो अपमानित रहिए ॥

(१२)

मेरे करसे नाथ ! वृत्र मर सकता है तब,

अस्थि आपकी मिले उसी का वज्र बने जब ।

मेरा कुलिस कठोर हुआ कुण्ठित उस पर है,

मेरी विजय मुनीश ! आप पर ही निर्भर है ॥

(१३)

"एवमस्तु" कह मुनि दधीचि ने छोड़ा तन को,

तुरत शान्ति मिल गई इन्द्र के व्याकुल मन को ।

बना अस्थि का वज्र अन्त भी हुआ वृत्र का,

किन्तु न होगा अन्त कभी मुनि चरित्र-का ॥

उद्धरणी

१—वृत्रासुर किस प्रकार मारा गया ?

२—वृत्रासुर के अत्याचारों का वर्णन अपनी सरल भाषा में करो ।

३—दधीचि ने क्या काम किया था ? उनके त्याग से तुम्हारे हृदय पर क्या प्रभाव पड़ता है ?

४—कुलिस, अस्थि, असुर, सत्वर और नेतृत्व शब्दों का अर्थ कर वाक्यों में प्रयोग करो ।

५—सचीपती, इन्द्रमुख, रवि-सन्मुख शब्दों में सविग्रह समास करो ।

६—सत्यशीलता

[बा० काशीनाथ खत्री]

[आप सिरसा जिला 'इलाहाबाद' के निवासी थे। आपके पिता का नाम बा० दयालदास था। आप सरकारी नौकर थे पर तो भी लिखने पढ़ने का व्यसन था। आपने कई अंग्रेज़ी पुस्तकों के अनुवाद भी किये हैं, जिनका आज तक आदर है। आप गद्य के सुयोग्य लेखक हैं। आपका लगभग साठ वर्ष की अवस्था में देहावसान हो गया।]

उत्तम गुण, जो बालकों को सीखना चाहिये वह सत्य-शीलता है। प्लेटो ने सत्य कहा है, कि मिथ्या वचन से देवता और मनुष्य दोनों को स्वाभाविक घृणा होती है। बहुधा बालक स्वभाव से ही सच्चे होते हैं। परन्तु भय और घमगड से, दूसरे के दबाव और सङ्गति से, उनका यह स्वभाव दब जाता है, क्योंकि "सङ्गान्नीचोऽथवोत्तमः" ऐसा बालक बड़ी अवस्था में निराथोथा, कपटी, मिथ्यावादी और निकम्मा हो जाता है। जोन स्टूअर्ट मिल साहब ने अपने एक ग्रन्थ में लिखा है कि इङ्गलैगड के मज़दूरी करने वाले लोग बहुधा मिथ्यावादी होते हैं और उसके साथ ही उनकी यह प्रशंसा की, कि सब योरप में केवल वही लोग अपनी जाति भर में ऐसे हैं जो मन में इससे लज्जित हैं।

युवकों को सदैव मन में यह समझे रहना चाहिये कि कोई बनावट या दिखावट की बात अन्त को खुले बिना नहीं रह सकती और कोई जन संसार में केवल बनावट की भड़क दिखा कर काम पूरा नहीं कर सकता। सुजन का धर्म है, कि समाज में जितना दीखे उसकी अपेक्षा अधिक होने का परिश्रम करता रहे। यह नहीं कि जितना है, उससे बहुत अधिक दिखाने की चेष्टा करे। वह जन जो बाहरी दिखावट के अर्थ अपने को इतना जतलाता है जितना वह नहीं है, बड़ी भूल करता है। इस छल से चाहे उसे अवसर पर उसका काम निकल जाय, परन्तु अन्त को वह ऐसा ही खुल जायगा जैसा चांदी की कलई किया हुआ पात्र। कुछ समय में ज्यों का त्यों तांबा दीखने लगता है। विश्वास रक्खो, कि संसार में कलाई किये हुए पात्र के समान कोई बनावट की बात बिना प्रकट हुए नहीं रह सकती।

बहुधा वाणिज्य में लोग इस प्रकार के छल, लाभ प्राप्त करने के अर्थ किया करते हैं, परन्तु लड़के जिनसे हमें यहां प्रयोजन है, बहुधा आलस्य, दम्भ, अहंकार, कायरता आदि के कारण ऐसा करते हैं, हर समय घेरने वाले इन चारों पापों से बचने के लिये लड़कों को बड़ी सावधानी रखनी चाहिये।

आलसी लड़कों के पास.आवश्यकता के समय कभी ठीक

वस्तु तैयार नहीं मिलती। इस कारण वह उसके बदले अशुद्ध—बे ठीक—वस्तु भेंट करते हैं। जैसे एक सुस्त विद्यार्थी को गुरु आज्ञा दे, कि अमुक ग्रन्थ के अमुक छन्द की भाषा लिख लाओ और वह परिश्रम बचाने के लिये सामने के पन्ने से नक़ल करके लिख दे, तो यह क्या हुआ? यह भी मिथ्या बोलने के समान है। गुरु ने यह जानना चाहा कि तुम अपनी समझ के अनुसार लिखो और तुम ऐसा न करके दूसरे का लिखा दिखाओ, तो यह मिथ्या छल नहीं है तो क्या है? इस प्रकार के सब बनावटी थोथे, सारहीन और दिखावट के काम यथार्थ में झूठ बोलने के समान हैं। इनसे हर एक को लज्जित होना उचित है। जैसे कि कहा भी है—

"नकृत्रिमाणां क्षमताऽस्ति वस्तुनि

अपिच—

पाखण्डं खण्डयेत् सदा।"

दम्भ और पाखण्ड भी मनुष्य में झूठ बोलने और छली होने का दोष कर देते हैं। दूसरे के सामने अच्छे और भले लगने की अभिलाषा करके युवा जो बहुधा अनजान और अनाड़ी हुआ करते हैं, कभी-कभी अपने को ऐसा जताने लगते हैं जैसा वे यथार्थ में नहीं हैं और अपना ढंग ऐसा करते हैं जिससे लोगों को धोखा हो। प्रथम ही मनुष्य को

बाल्यावस्था से अपना दोष या अज्ञान स्वीकार करने की बान डालनी चाहिये, इससे जीवन भर उसको लाभ रहेगा; यदि वह ऐसा न करे, तो अपना अज्ञान छिपाने की उसमें आदत हो जायगी जिसके कारण उसका सब जीवन छली और व्यर्थ दिखावट में बीतेगा और सचाई तनिक न रहेगी। युवकों को दिखावट और दम्भ से इतना अधिक दुःख नहीं होता, जितना कायरता, साहस और धैर्य न होने के कारण हुआ करता है।

गर्व और घमराड जो बहुधा लड़कों में हुआ करता है, अवश्य एक दिन नीचा देखने से दूर हो जाता है। सब समाज एक दूसरे का भेदी बना रहता है, किसी और सभासद् के दम्भ और पाखराड को सहन नहीं करता, वरन् उसकी चिन्ता में रह कर परदा खोल देता है। कभी-कभी तनिक डरपोकपन यथोचित रीति से होना काम भी कर जाता है। वे जन जो प्रथम ही यह अभ्यास नहीं डालते कि जो उनकी समझ में आवे कह दें, तो अन्त को यह बान पड़ जाती है कि जो वे चाहते हैं, उसका चिन्तवन करने से डरने लगते हैं। जो समझ में ठीक जान पड़े, उसी को निडर होकर करना निःसन्देह बड़ी वीरता है और सबसे सुन्दर उत्कृष्ट सामाजिक धर्म और गुण है। ऐसा करने से समाज के पुराने-रीति-व्यवहार, प्राचीन लेख और कहावतें तथा अत्यन्त प्रिय नातेदार और मित्र विरुद्ध हो जाते हैं। ऐसी दशा में यथार्थ में सत्य-सत्य कहना इतनी दृढ़ता और

सहन-शीलता की शक्ति चाहता है, जितनी सर्वसाधारण मनुष्यों में नहीं हुआ करती। बहुधा बिना अवसर और आवश्यकता के सब सच कह देना जिसको एक जन जानता हो योग्य नहीं हुआ करता। किसी बात से इतनी अधिक अप्रसन्नता नहीं होती, जितनी उन सच के कहने से होती है जो बहुधा लोगों के लाभ, अभ्यास और रुचि के विरुद्ध हुआ करती है। ऐसी अप्रसन्नता बिना प्रयोजन कराना किसी तरह उचित नहीं; जब कारण सहित हो तो कुछ चिन्ता नहीं। ऐसे ही विषयों के अर्थ उस नीत्युपदेशक का यह उपदेश है कि "तुम सर्प के समान चतुर और कबूतर के समान भोले और सीधे रहो" तो भी कोई अवसर ऐसे हुआ करते हैं; कि जब निर्भय होकर बोलना ही उचित होता है। यदि वह ऐसा न करे तो वह कायर और भीरु समझा जायगा; यदि यह सहस्रों सिपाहियों का स्वामी राजा भी हो तो भी कायर ही गिना जायगा।

उद्धरणी

१—"तुम सर्प के समान चतुर और कबूतर के समान भोले और सीधे रहो" इसका क्या आशय है? स्पष्ट समझाओ।

२—सत्य शीलता के लाभ अपनी भाषा में लिखो।

३—आलसी बालक क्यों झूठे होते हैं? एक ऐसा उदाहरण दो, जिसमें आलस के कारण झूँठ बोलना पड़ा हो।

४—बालक झूँठे और छली किन कारणों से हो जाते हैं?

५—निम्नलिखित शब्दों का अर्थ कर वाक्यों में प्रयोग करो :—

अज्ञान, कायरता, नीत्युपदेशक, दम्भ ।

७—आशीर्वाद

[बाबू बालमुकुन्द गुप्त]

[आपका जन्म रोहतक ज़िले में, अग्रवाल वैश्य घराने में संवत १९२२ में हुआ था। आप पहिले उर्दू के लेखक थे पीछे हिन्दी मे भी लेख लिखने लगे। आपने कई समाचार पत्रों (हिन्दुस्तान, बंगवासी, भारत मित्र, कोहेनूर) का सम्पादन भी किया। आपके रचित और अनूदित ग्रन्थ 'शिवशम्भू का चिट्ठा' 'हरिदास' आदि हैं। यह पाठ आपके 'शिवशम्भू का चिट्ठा' से उद्धृत किया गया है। आपके लेखों की भाषा मुहावरेदार एवं मंजी हुई होती है।]

तीसरे पहर का समय था। दिन जल्दी-जल्दी ढल रहा था और सामने से संध्या फुर्ती के साथ पांव बढ़ाये चली आती थी। शर्मा महाराज बूटी की धुन में लगे हुये थे। सिलबट्टे से भंग रगड़ी जा रही थी। मिर्च मसाला साफ़ हो रहा था, बादाम इलायची के छिलके उतारे जाते थे, नागपुरी नारंगियाँ छील-छीलकर रस निकाला जाता था। इतने में देखा कि बादल उमड़ रहे हैं। चीलें नीचे उतर रही हैं। तबियत भुरभुरा उठी। इधर भंग, उधर घटा, बहार में बहार। इतने में वायु

का वेग बढ़ा, चीलें अदृश्य हुईं। अँधेरा छाया, बूँदें गिरने लगीं साथ ही तड़-तड़ धड़-धड़ होने लगी, देखो ओले गिर रहे हैं। ओले में कुछ वर्षा हुई, बम-भोला कहकर शर्मा जी ने एक लोटा भर चढ़ाई। ठीक उसी समय लाल डिग्गी पर लार्डमिंटो ने बंगदेश के भूतपूर्व छोटेलाट उडवर्न की मूर्ति खोली। ठीक एक ही समय कलकत्ते में दो आवश्यक काम हुए। भेद इतना ही था कि शिवशंभु शर्मा के बरामदे की छत पर बूँदें गिरती थीं। और लार्डमिंटो के सर या छाते पर।

भंग छान कर महराज जी ने खटिया पर लंबी तानी। कुछ काल सुपुप्ति के आनन्द में निमग्न रहे। अचानक धड़-धड़, तड़-तड़ के शब्द ने कानों में प्रवेश किया, आखें मलते उठे। वायु के झोंकों से किवाड़ पुर्ज़े-पुर्ज़े हुआ चाहते थे। बरामदे की टीनों पर तड़ातड़ के साथ ठनाका भी होता था। एक दरवाज़े के किवाड़ खोलकर झाँका तो हवा के झोकों ने दस-बीस बूँदें और दो-चार ओलों से शर्माजी के मुख का अभिषेक किया। कमरे के अन्दर भी ओलों की एक बौछाड़ पहुँची। फुर्ती से किवाड़ बन्द किये। तथापि एक शीशा चूर हुआ। इतने में टन-टन करके दस बजे। शर्माजी फिर चारपाई पर लम्बायमान हुए। कान टीन और ओलों के सम्मिलन की टनाटन का मधुर शब्द सुनने लगे। आँखें और हाथ-पाँव सुख में थे, पर विचार के घोड़े को विश्राम न था। वह ओलों की चोटों से बाजुओं को बचाता हुआ परिन्दों की तरह इधर-उधर उड़ रहा था। गुलाबी नशे में

विचारों का तार बंधा कि बड़े लाट फुर्ती से अपनी कोठी में घुस गये होंगे और दूसरे अमीर भी अपने अपने घरों में चले गये होंगे, पर वह चील कहाँ गई होगी ?......हा, शिवशंभु को इन पक्षियों की चिन्ता है, पर यह नहीं जानता कि इस अभ्रस्पर्शी अट्टालिकाओं से परिपूरित महानगर में सहस्रों अभागे मनुष्य रात बिताने को झोंपड़ी भी नहीं रखते। इस समय सहस्रों अट्टालिकाएँ "पुरा यत्र स्रोतः पुलिनमधुना तत्र सरिताम्" के अनुसार शून्य पड़ी हैं।

आन की आन में विचार बदला, नशा उड़ा, हृदय पर दुर्बलता आई। भारत! तेरी वर्त्तमान दशा में हर्ष को अधिक देर स्थिरता कहाँ! प्यारी भंग! तेरी कृपा! तेरी कृपा से कभी कुछ काल के लिये चिन्ता दूर हो जाती है। इसी से तेरा सहयोग अच्छा समझा है। नहीं तो यह अधबूढ़ा भंगड़ क्या सुख का भूखा है। घावों से चूर जैसे नींद में पड़कर अपने कष्ट भूल जाता है अथवा स्वप्न में अपने को स्वस्थ देखता है तुझे पीकर शिवशंभु भी वैसे ही कभी अपने कष्टों को भूल जाता है।

चिंता स्रोत दूसरी ओर फिरा। विचार आया कि काल अनन्त है, जो बात इस समय है वह सदा न रहेगी। इससे एक समय अच्छा भी आ सकता है। जो बात आज आठ-आठ आँसू रुलाती है, वह किसी दिन बड़ा आनन्द उत्पन्न कर

सकती है। एक दिन ऐसी ही काली रात थी इससे भी घोर अँधेरा भादों कृष्णा अष्टमी की अर्द्धरात्रि, चारों ओर घोर अंधकार—वर्षा होती थी, बिजली कौंदती थी, घन गरजते थे। यमुना उत्ताल तरंगों में बह रही थी। ऐसे समय में एक वृद्ध पुरुष एक सद्यजात शिशु को गोद में लिये मथुरा के कारागार से निकल रहा था।......वह और कोई नहीं थे, यदुवंशी महाराज वसुदेव थे और नवजात शिशु कृष्ण वही बालक आगे कृष्ण हुआ, ब्रज-प्यारा हुआ, माँ-बाप की आँखों का तारा हुआ, यदुकुल मुकुट हुआ, उस समय की राजनीति का अधिष्ठाता हुआ। जिधर वह हुआ, उधर विजय हुई। जिसके विरुद्ध हुआ, पराजय हुई। वही हिन्दुओं का सर्वप्रधान अवतार हुआ और शिवशंभु शर्मा का इष्टदेव। वह कारागार भारत-सन्तान के लिये तीर्थ हुआ। वहाँ की धूलि मस्तक पर चढ़ाने योग्य हुई।

"बर ज़मीने की निशाने कफ़े पाये तो बुवद।
साहला सिजदये साहिब नज़रां ख्वाह बूद

जिस भूमि पर तेरे पद चिन्ह हैं, उस पर दृष्टि वाले सैकड़ों वर्ष तक अपना मस्तक टेकेंगे।

तब तो जेल बुरी जगह नहीं है।

उद्धरणी

१—भंग के नशे की दशा का वर्णन, जो तुमने किसी व्यक्ति को देखा हो करो।

२—निम्न का अर्थ करो और वाक्यों में प्रयोग करो :—

बहार में बहार, गुलाबी नशे में, वर्तमान दशा।

३—आँख से ओझल होना—इसका अर्थ प्रकट करो।

४—इस पाठ का भाव अपनी भाषा में लिखो।

५—शर्मा जी फिर चारपाई........शून्य पड़ी है—इस वाक्य से क्या समझते हो।

८—माता का स्नेह

(पं० बालकृष्ण भट्ट)

[इनका जन्म सं० १९०१ में प्रयाग में हुआ था। ये हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वान् और संस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। इन्होंने "हिन्दी प्रदीप" नाम का एक सुन्दर मासिक पत्र निकाला था, जो बत्तीस वर्षों तक बराबर चलता रहा। हिन्दी के प्राचीन लेखकों में इनका सर्वोच्च स्थान है। इनकी लेखन-शैली में एक विचित्र आकर्षण पाया जाता है। आपकी मुख्य-मुख्य रचनायें "सौ अजान एक सुजान", नूतन ब्रह्मचारी, साहित्य-सुमन आदि प्रसिद्ध हैं। इनका सं० १९७१ में देहान्त हो गया था।]

"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषोवेद"

वात्सल्यरस की शुद्ध मूर्ति माता के सहज स्नेह की तुलना इस जगत् में, जहाँ केवल अपना स्वार्थ ही प्रधान है, कहीं ढूँढ़ने से भी न मिलेगी। दादी, दादा, चाचा, ताऊ आदि का स्नेह मर्यादा परिपालन के ध्यान से देखा जाता है, किन्तु माता-पिता का स्नेह पुत्र में निरे वात्सल्य भाव के मूल पर है। अब इन दोनों में विशेष आदरणीय, सच्चा और निःस्वार्थ प्रेम किसका है? इसकी समालोचना इस लेख का मुख्य उद्देश्य है। बहुतों की अनुमति है, कि लाड़-प्यार से लड़के बिगड़ जाते हैं, पर सूक्ष्म विचार से देखा जाय तो बालकों में अच्छी-अच्छी बातों का अंकुर गुप्त रीति पर प्यार ही से जमता है।

विलायत के एक विद्वान् ने लिखा है कि मेरी माँ के बार-बार मुझे चूम्बन ने चित्रकारी में प्रवीण कर दिया। गुरु जितना पाठशाला में भय और ताड़ना दिखला कर वर्षों में सिखला सकता है, उतना अपने घर में वह माँ के अकृत्रिम सहज स्नेह से एक दिन में सीख लेता है। माँ के स्वाभाविक सच्चे और अकृत्रिम प्रेम का प्रमाण इससे बढ़कर और क्या मिल सकता है कि लड़का कितना ही रोता अथवा मुरझाया हुआ हो, माँ की गोद में जाते ही चुप हो जाता है और जहाँ थोड़ी देर तक लड़के ने दूध न पिया

माँ के स्तन भर जाते हैं, दूध टपकने लगता है और वह विकल हो जाती है। दस मास तक गर्भ में धारण करने का क्लेश, जनने के समय की पीड़ा, उसके पालन-पोषण की चिन्ता, उसे नीरोग और प्रसन्न देखकर चित्त का हुलास रोगी तथा अनमन देखकर अत्यन्त विकल होना इत्यादि सब माता ही में पाया जाता है। लड़का कपूत और निकम्मा निकल जाय तो बाप उसका साथ नहीं देता, वह उसे घर से निकाल अलग कर देता है, पर माँ बहुधा पति को भी त्याग निकम्मे पुत्र का साथ देती है। दो चार नहीं वरन् हज़ार पाँच सौ ऐसी मातायें देखी गई हैं जिन्होंने बालक की अत्यन्त कोमल अवस्था में ही पिता के न रहने पर अकेले चक्की पीस कर अपने पुत्र को पाला और उसे पढ़ा लिखा कर सब भाँति समर्थ और योग्य कर दिया। सच है—

"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति"

पुत्र भी ऐसे सुयोग्य हुए हैं कि वैसे सब भाँति भरे पूरे घराने में भी न निकलेंगे। महाकवि श्री हर्ष के पिता ने, जब केवल पाँच ही वर्ष के थे, वाद में पराजित होकर लाज से अपना तन त्याग दिया तो उसकी माँ ने चिन्तामणि मंत्र का इनसे जाप करवाकर सरस्वती देवी का कृपापात्र बना इन्हें बड़ा भारी पंडित बना दिया और अपने पति के परास्त करने वाले पंडितों को वाद में हराकर पूरा बदला चुकवाया। पुराणों में ऐसी अनेक

कथायें मिलती हैं जिनमें माता का वात्सल्य टपक रहा है। माता का एक बार प्रोत्साहन पुत्र के लिये जैसा उपकारी और उसके चित्त में प्रभाव उत्पन्न करने वाला होता है वैसी पिता की सौ बार की शिक्षा और ताड़ना भी नहीं। सौतेली माँ सुरुचि के वज्रपात सदृश वाक्य-प्रहार से ताड़ित और पिता की अवज्ञा और निरादर से अत्यन्त संतापित ध्रुव को जब ये केवल पाँच ही वर्ष के बालक थे—माता का एक बार का प्रोत्साहन ध्रुव पदवी की प्राप्ति का हेतु हुआ, जिसके समान उच्च और स्थिर पद आज तक किसी को मिला ही नहीं। पिता का स्नेह बहुधा बदला चुकाने की इच्छा से होता है। वह पुत्र को इसीलिये पालता-पोसता और पढ़ाता-लिखाता है कि बुढ़ापे में वह हमारे काम आवेगा, जब सब भाँति हम अपाहिज और अपंग हो जायँगे तो हमारी सेवा करेगा और हमारे अन्न-वस्त्र की चिन्ता रक्खेगा। पर मा का उदार और अकृत्रिम प्रेम इन सब बातों की कभी इच्छा नहीं रखता। माँ अपनी प्रिय सन्तान के लिये कितना कष्ट सहती है जिसको स्मरण कर चित्त में वात्सल्य भाव का उद्रेक हो आता है। माता के स्नेह में पिता के समान प्रत्युपकार की वासना भी नहीं है। दया मानो देह धरे सामने आकर खड़ी हो जाती है। टूटी फूस की झोपड़ी में जब मूसलाधार पानी बरस रहा है। फूस का ठाट सब ओर से ऐसा टपकता है कि कहीं तिल भर की जगह नहीं बची है, न कंगाली के कारण इतना कपड़ा-लत्ता पास है कि आप ओढ़े

और प्रिय संतान को ढाँपकर वृष्टि से बचावे, ऐसे समय में आधी धोती ओढ़े आधी से अपने दुधमुँहे बच्चे को ढाँपकर माता उसको छाती से लगाये हुये है। अपने प्राण और देह की तनिक भी चिन्ता नहीं है। वह अत्यन्त व्यग्र हो रही है। पुत्र को रोगी और अस्वस्थ दशा में पलँग के पास उदास बैठी मन मारे उसका मुँह ताक रही है। रात की नींद, दिन का भोजन दुस्तर हो गया है। भाँति-भाँति की मिन्नत मानती है जो कोई कुछ कहता है वह सब कुछ करती जाती है अपनी जान तक चाहे चली जाय पर पुत्र को स्वास्थ्य लाभ हो। पिता को अपने शरीर पर इतना कष्ट उठाना कभी न आवेगा। यह माता ही है जो पुत्र के स्वाभाविक स्नेह के वश हो इतने-इतने दुख सहती है। बुद्धिमानों ने इन्हीं सब बात को सोच विचार कर लिख दिया है कि पिता से माँ का गौरव सौ गुना अधिक है। केवल गौरव मान बैठ रहना कैसा? हम तो कहेंगे पुत्र जन्म भर तन, मन, धन से माँ की सेवा करे तो भी उससे उऋण नहीं हो सकता। भाई-बहिन में भाई-भाई में या बहिन-बहिन में परस्पर स्नेह का बंधन और बहुधा समानशील का होना माँ के ही दूध का परिणाम है। एक ही माँ का सब दूध पीते हैं इसलिये वे इतने प्रेम-बद्ध रहते हैं। रहस्यलीला में गोपियों ने भगवान् से तीन प्रश्न किये, जिसमें उन्होंने तीन तरह के प्रेम का मार्ग दिखाया है। एक तो वे जो प्रेम करने पर प्रेम करते हैं, दूसरे वे जो उनसे चाहे प्रेम करो व न करो, तुमसे प्रेम करते हैं,

तीसरे वे जो ऐसे हुए हैं कि उनसे कितना ही प्रेम करो तो भी नहीं पसीजते। इसके उत्तर में भगवान् ने कहा है कि जो परस्पर प्रेम करते हैं, वह एक प्रकार का बदला है। स्वच्छ स्नेह उसे न कहेंगे। काम पड़ने पर मित्र शत्रु बना ही करते हैं। उसमें सौहार्द्र धर्म मूल नहीं है, किन्तु दोनों परस्पर स्वार्थी हुए तो कुछ न कुछ कपट उसमें अवश्य ही रहेगा। मन में कपट का लेश भी आया कि स्वच्छ स्नेह की जड़ कट गई। केवल धर्म ही धर्म और स्नेह को दर्पण के समान प्रकाश कर देने वाला, जिसमें बदला पाने की कहीं गंध भी नहीं, वह स्नेह वही है जो दया के साक्षात् स्वरूप माँ और बाप पुत्र में रखते हैं।

उद्धरणी

१—'माता का स्नेह' इस पाठ का सारांश अपनी भाषा में लिखो।

२—माता और पुत्र के प्रेम का वर्णन करो।

३—निम्नलिखित शब्दों के अर्थ करो। और उन्हें वाक्यों में प्रयोग करो:—

प्रवीण, सौहार्द्र, साक्षात्, उऋण, वज्रपात।

४—बच्चों की उन्नति का विकास किस के गुणों पर अधिक निर्भर रहता है? और क्यों? प्रमाण देकर सिद्ध करो।

६—भयंकर भर्त्सना

(बाबू मैथिली शरण)

[आपने चिरगाँव निवासी बाबू रामचरन गुप्त के यहाँ जन्म लिया। आप शुद्ध एवं खड़ी बोली में कविता करते हैं। व्याकरण पालक हैं। आपके ये गुण पं० महाबीर प्रसाद जी द्विवेदीजी के गुणों से मिलते हैं। आपकी कवितायें देश प्रेम से परिपूर्ण हैं। अतएव वर्तमान काल में आप प्रधान कवि माने जाते हैं। आपकी रचनाओं में 'भारत भारती' मुख्य पुस्तक है। रूङ्कार, पंचवटी और तिलोत्मा, चन्द्रहास तथा विरहणी ब्रजाङ्गना, मेघनाथ वध, पलासी का युद्ध आदि। आपने बंगला ग्रंथों का अनुवाद भी किया है। आपका लिखा 'साकेत' काव्य भी अद्वितीय ग्रन्थ है। आप सारा समय साहित्य सेवा में व्यतीत करते हैं।]

(१)

हे ना—नहीं 'नाथ नहीं कहूँगी,
अनाथिनी होकर ही रहूँगी।
होते कहीं जो तुम नाथ मेरे,
तो भागते क्या तुम पीठ फेरे॥

(२)

यथार्थ ही क्या मुँह को छिपाये,
संग्राम से हो तुम भाग आये।

धिक्कार है, हा ! अब क्या करूँ मैं ?
रक्खी कहाँ मौत कि जो मरूँ मैं ॥

(३)

हा ! पीठ वैरी-दल को दिखा के,
त्यों हार माथे पर यों लिखा के।
आये दिखाने मुँह हो यहाँ क्या;
भला बनेगा तुमसे कहाँ क्या ॥

(४)

परन्तु मैं होकर वीर-बाला,
जो लोक में हैं करती उजाला ;
देखूँ तुम्हारा मुँह आज कैसे ?
सहूँ कहो तो यह लाज कैसे ॥

(५)

आये यहाँ क्या छिपने घरों में ?
या रानियों के घन-घाँघरों में ?
परन्तु भागे तुम भीरु ज्योंही ;
हुए कहो क्या हत वे न ज्योंही ॥

(६)

थी मृत्यु की जो इस भाँति भीति,
जो थी मिटानी सब रीति नीति;

तो जन्म क्यों सत्कुल में लिया था ?
क्यों ब्याह राना-कुल में किया था ॥

(७)

जयाब्धिजा को न बरा गया जो,
न युद्ध का सिंधु तरा गया जो,
तो क्या मरा भी न गया समक्ष ?
डूबा सभी हा ! तुमसे स्वपक्ष ॥

(८)

राठौर ! क्या लाज तुम्हें न आयी,
जो कीर्ति दोनों कुल की मिटायी।
क्या देह से है यश हाय छोटा ?
या मृत्यु से है अमरत्व खोटा ॥

(९)

संग्राम में जो तुम काम आते,
तो लोक में निश्चल नाम पाते।
मैं भी सती होकर धन्य होती ;
न क्षत्रिया होकर आज रोती ॥

(१०)

न भाग्य में था यह किंतु मेरे;
दुर्दैव ! हैं ये सब काम तेरे।

(४१)

तू जो करे सो सब ठीक ही है,
मनुष्य-विश्वास अलीक ही है ॥

(११)

मा, मेदनी ! तू फट, मै समाऊँ,
कुकीर्ति से तो अब त्राण पाऊँ।
न लोक में मैं यदि जन्म पाती,
तो भीरु-भार्या फिर क्यों कहाती ॥

(१२)

नहीं-नहीं मैं यदि भीरु-भार्या,
तो कौन होगी फिर और आर्या ?
हाँ है तुम्हीं ने कुल-लाज खोई,
परन्तु मेरे तुम हो न कोई ॥

(१३)

सीसोदियों के वन के जमाई,
है कीर्ति अच्छी तुमने कमाई।
आयी तुम्हें लाज न नामकी भी।
रक्षा न होगी अब धाम की भी ॥

(१४)

सुना तुम्हें था वर-वीर मैने,
सौंपा तभी था स्वशरीर मैने।

यथार्थता किन्तु मुझे तुम्हारी,
अभी हुई है यह ज्ञात सारी ॥

(१५)

विशाल वक्षःस्थल दीर्घ-भाल,
आजानु लम्बे युग बाहु जाल।
ये देखने ही भर को तुम्हारे,
ज्यों चित्र में अंकित अंग सारे।

(१६)

दैवात् कभी शत्रु कुदृष्टि लावें,
सोत्साह मेरे हरणार्थ आवें।
तो क्या मुझे भी तुम छोड़ भागो ?
आश्चर्य क्या जो मुँह मोड़ भागो ॥

(१७)

जाओ, यहाँ से तुम लौट जाओ,
तुम्हे यहाँ स्थान नहीं कि आओ।
हो शून्य तो भी यह सिंह पौर,
है गीदड़ों को इसमें न ठौर ॥

(१८)

चाहे अवज्ञा करके तुम्हारी,
मैंने किया हो अपराध भारी।

परन्तु मैं होकर क्षत्रियाणी,
कैसे कहूँ हा! न यथार्थ वाणी ॥

(१६)

मेरा तुम्हारा न मिलाप होगा,
हा! शांत कैसे यह ताप होगा।
सर्वेश लेवें सुध शीघ्र मेरी,
देवें मुझे मृत्यु, करें न देरी ॥

उद्धरणी

१—महाराज यशवन्तसिंह को युद्ध से लौटने पर उनकी महारानी ने क्या कहा? अपनी भाषा में वर्णन करो।

२—दुर्दैव, सोत्साह, हरणार्थ, जयाब्धिजा में संधि विच्छेद करो, और यह भी बताओ कि ये शब्द किस सन्धि के हैं?

३—'भयंकर भर्त्सना' शब्द का अर्थ बताओ।

४—निम्न-लिखित शब्दों के अर्थ करो और अपने वाक्यों में इन शब्दों का प्रयोग करो:—

समक्ष, यथार्थ, अवज्ञा, अंकित।

१०—बादल

[पं० गोकुल चंद शर्मा एम० ए०]

[आपका जन्म अलीगढ़ ज़िले में सम्वत् १९४९ में हुआ। आप वहीं 'धर्म-समाज इन्टर कालेज में हिन्दी के अध्यापक हैं। आप की लिखी पुस्तकें ' परन्तप ' प्रणवीर प्रताप, आधुनिक व्याकरण और निबन्धादर्श प्रसिद्ध हैं। आप एक श्रेष्ठ गद्य लेखक और उदार प्रकृति के व्यक्ति हैं। आप की भाषा सरस और सरल होती है।]

बादल ! हवा पर सवार होकर तुम इतने इतरा चले। तुम धनी हो, बली हो, मानी हो, दानी हो, पर बावले हो, उतावले हो, अभिमानी हो, अज्ञानी हो। मैं तुम्हें [illegible] से देख रहा हूँ। तुम्हारी लीला ही निराली है। बड़े होने पर लोगों में समझ आ जाती है, पर तुम अपने अल्हड़पन में ही मस्त हो। जब तुम्हारी अठखेलियों की ओर हम देखते हैं, तब तो बड़े ही नयनाभिराम दृष्टि आते हो। शरद् की मुक्ता-धवल चाँदनी में चन्द्रमा की किरणों के झूले पर झूलते हुये तुम हमारे नयनों में झूलने लगते हो। ऊषाकाल में मरीचि-माली के कर-स्पर्श से तुम्हारी आभा कैसी कमनीय प्रतीत होती है। सान्ध्य गगन में तुम्हारा पीत-लोहित वर्ण और उस पर बिखरा हुआ सुरम्य रश्मिजाल गुफा को लौटते हुये सिंह की उपमा बन जाता है। तुम्हारा पर्वतीय विहार व्रज के गो-चारण का दृश्य उपस्थित कर देता है। [illegible]ों के शिखरों पर तुम मुकुट से प्रतीत होते हो।

पावस में इन्द्रचाप से अलंकृत तुम्हारा गान रसिकता से रेखाङ्कित चित्र-सा जान पड़ता है। तुम्हारे मस्तक पर चमकती हुई बिजली की झलक तुम्हारे उग्र प्रभाव को प्रकाशित करती है। परन्तु बादल ! सभी प्रकाशवान् पदार्थ सुवर्ण नहीं होते।

जीवन-धन ! तुम जीवन-वर्षा करके वसुधा में जीवन लाते हो। परन्तु, विवेक से काम कम लेते हो। तुम्हारी वर्षा का विशेष भाग मिलता है पाषाण-भूमि पर्वतों को वा जलराशि समुद्र को। बाग बगीचे, खेती-बारी पर तुम्हारी कृपा प्रायः यदा-कदा समय-कुसमय होती है और ऊसर पर मूसलाधार गिराने में तो तुम्हारे गाँठ के पूरे और आँख के अन्धे होने में सन्देह ही नहीं रहता। जहाँ तुम स्वयं पत्थर बनकर गिरते हो, भला वहाँ क्या लाभ उठाते हो ? अपने प्राण जायँ तो जायँ पर औरों का नाश हो, यही बात है न !

घनश्याम ! तुम स्वयं कला-रूप धारण करते हो, पर कालों पर बिजली बनकर गिरते हो। यह कहाँ का न्याय ? इस जाति-द्रोह में क्या लाभ ? घुमड़-घुमड़ और उमड़-उमड़ कर तुम प्रलय मचाते हो, तुम्हारा अभिमान तुम्हारे बल के साथ बढ़ता है। इसमें तुम मुँह की खाकर भी लज्जित नहीं होते। जानते हो कि " निर्धन के धन गिरधारी ' फिर भी वही अकड़। बताओ तो, तुमने अपने हिमायती इन्द्र को लेकर भी व्रज के ग्वाल-बालों का क्या कर लिया था ? उस समय तुम पानी तो हो गये थे,

पर डूबकर मरे नहीं। ध्रुव की तपस्या में ही तुमने विघ्न डालने से क्या कसर रक्खी थी ? पर, वह ध्रुव ही रहा, और तुम ध्रुव से ध्रुव तक दौड़ लगाकर भी अध्रुव ही रहे।

तुम्हें पता है तुम कहाँ जन्मे हो ? तुम्हारा स्थान कहाँ है ? इस धरती पर । इसलिये धरती पर पाँव रखकर चलो।

"गर्वः खर्वी भाव भूरी करोति"

सूर्य के तेज से ऊँचे उठ गये तो क्या तुम्हारा स्वभाव बदल गया ? तुम तो सदा से नीचे की ओर जाने वाले रहे हो। ऊँचे चढ़कर कुछ ऊँची बातें भी सीख लो । हवाई घोड़े पर क्या चढ़े, अन्धे बनकर उड़ते हो। तभी तो पहाड़ों से टक्कर खाकर तुम्हारे दाँत टूटते हैं। हवा के चक्कर में तुम ऐसे आते हो कि घनचक्कर बन जाते हो।

तुम अपने गुणों की ओर देखो तुम महादानी हो, सब को देते हो, किसी को विमुख नहीं करते। परन्तु पात्र-परीक्षा में अधूरे हो। चातक ने युग बिता दिये, तुम्हारी अनन्य भक्ति से कभी मुँह न मोड़ा। परन्तु आज तक तुमने उसका दुख-मोचन किया ? क्या अब भी उस दीन पर तुम ओले गिराकर अपनी कठोरता का परिचय नहीं देते ? ऐसा क्यों ? भक्तों की तो भगवान् भी सुध लेते हैं, परीक्षा की सीमा होती है। तुम केले पर गिरो तो कपूर बनकर संसार को महका दो, सीप के मुख में गिरो तो जगत् को मोतियों से जगमगा दो, खेतों पर गिरो,

तो पृथ्वी का अञ्चल धानी परिधान से लहलहा दो और भारतीय किसान-प्रजा तुम्हारी छत्रछाया में राम-राज्य का अनुभव करने लगे। पर कब? जब तुम्हारा संकल्प ध्रुव हो, तुम्हें शुभाशुभ का विवेक हो। इसी से तो हम कहते हैं कि तुम बावले हो, उतावले हो।

उद्धरणी

१—बादल अपने बल का दुरुपयोग किस प्रकार करता है ?

२—निम्न-लिखित मुहावरे व कहावतों को समझाओ—नयनों में झूलना, मुँह की खाना, धरती पर पाँव रखना, आँख के अन्धे और गाँठ के पूरे।

३—नीचे लिखे शब्दों का अर्थ कर वाक्यों में प्रयोग करो :—

मरीचि माली, अञ्चल, नयनाभिराम, विवेक।

४—बादल को बावला और उतावला क्यों कहा गया है ?

५—निम्नाङ्कित का अर्थ बताओ :—

अ—घन श्याम ? तुम स्वयं .....जाति द्रोह से क्या लाभ ?

आ—जीवन धन ? तुम जीवन वर्षा...जीवन लाते हो।

६—इस पाठ के अन्तिम अनुच्छेद में क्रिया विशेषण शब्द छाँट कर पदान्वय करो।

११—रामराज्याभिषेक

(राय बहादुर लाला सीताराम बी० ए०)

[आपका जन्म अयोध्या में बाबू शिवरत्न जी के घर में हुआ। आप डिप्टी कलैक्टरी से पेन्सन पाकर अब प्रयाग में हैं। आप हिन्दी के योग्य लेखक हैं। आप ने कालिदास के कई ग्रन्थों का अनुवाद भी किया है। आपकी भाषा सरल और सुबोध होती है। आपने ब्रजभाषा (घनाक्षरी आदि में) और अवधी (दोहे चौपाइयों में) कविता भी की है]

[स्थान—लङ्का सुबेल पर्वत]

(श्री रामचन्द्र, लछमण, सीता, सुग्रीव आदि खड़े हैं;
पुष्पक को आगे किये विभीषण आता है)

विभीषण—मैंने श्रीरामचन्द्र जी की आज्ञा पूरी की। (आगे बढ़कर) महाराज रामचन्द्र जी की जय हो, महाराज, आपने जो आज्ञा दी था उसमें इतनी पूरी की गई।

छोड़े बन्दी लोग सब, दीन्हीं ध्वजा सजाय।
सोने की जंजीर घर, चहुँ दिसि दई लगाय॥

राम—वाह लंकेश्वर वाह, बहुत अच्छा किया! (सुग्रीव से) मित्र सुग्रीव क्या करना है।

सुग्रीव—

फूला गर्व, न काहु गनत, बल धरे अपारा।
कांटे सम जग हृदय गड़त, प्रभु ताहि उवारा॥

मिटो गानि अपमान, वचन आगे जो दीन्हा।
देइ विभीषन राज, ताहि पूरन प्रभु कीन्हा॥

अब तो यही काम है कि हनूमान जी को भरत जी के पास भेज दीजिये, हनुमान जी द्रोण पर्वत लेने गये थे, तभी उन्होंने सब हाल सुना होगा। सो वह बहुत घबड़ा रहे होंगे और आप चढ़कर विमान-राज की शोभा बढ़ाइये।

(विमान पर सब बैठते हैं)

राम—बहुत अच्छा।

सीता—(अलग लक्ष्मण से) हम लोग अब कहाँ चलेंगे?

लक्ष्मण—भाभी, रघुकुल की राजधानी अयोध्या को।

सीता—तो क्या बनवास के दिन पूरे हो गये?

(विमान चलता है—सब बाहर जाते हैं)

[स्थान—अयोध्या के बाहर सड़क]

(एक ओर से राम, लक्ष्मण सीता, सुग्रीव आदि और दूसरी ओर से भरत, शत्रुघ्न आदि आते हैं)।

राम—(जल्दी से आगे बढ़ते हुए भरत को उठाकर आओ) भैया।

लागत ब्रह्मानन्दसम प्रकट रूप यहि काल।
तेरे तन को परस यह सीतल मनहुँ मृनाल॥

(गले लगाते हैं)

(लक्ष्मण पैरों पकड़कर भरत से मिलते हैं)

(शत्रुघ्न राम लक्ष्मण को प्रणाम करते हैं)

राम, लक्ष्मण—(भरत और शत्रुघ्न से) अपने कुल में जैसे लोग हो गये हैं वैसे ही तुम भी हो।

(भरत और शत्रुघ्न सीता को दण्डवत करते हैं)

सीता—भैया जेठे भाई के प्यारे हो।

राम—भैया भरत शत्रुघ्न,

हमरे दुख के सिन्धु में आये पोत समान।
यह कपीस लंकेश यह धार्मिक मित्र सुजान॥

(सुग्रीव और विभीषण को रोकते हैं)

(भरत और शत्रुघ्न दोनों से मिलते हैं)

भरत—भाई हम लोगों के कुल गुरु महात्मा वसिष्ठ जी अभिषेक का प्रबन्ध करके आप ही राह देख रहे हैं आपकी क्या आज्ञा है?

राम—(आप ही आप) महात्मा कौशिक का भी ध्यान रखना चाहिये और वसिष्ठ जी यह कहते हैं। अच्छा समय पर बना लेंगे (प्रकाश) जो कुल गुरु की आज्ञा।

(सब बाहर जाते हैं)

[स्थान—अयोध्या का राज-मंदिर]

वसिष्ठ—(आप ही आप)

छमा सिन्धु गुन गगन के मानहु परम निधान।
आरतजन के पुन्य कर उदय सो मूरत मान॥
इन आंखिन सोइ देखियत कृपा राम श्रीराम।
भये सो परम आनन्द मन हम सब पूरन काम॥

तौ भी लोकरीति करनी ही चाहिये (प्रकाश) बहू कौशिल्या सुमित्रा!

कौशिल्या और सुमित्रा—कहिये गुरु जी।

वशिष्ठ—हम लोगों के भाग्य मे लड़के लौट आये।

कौशिल्या और सुमित्रा—आपकी आसीसो से।

अरुन्धती—(कैकेई को देखकर) बहू तुम उदास क्यों बैठी हो?

कैकेई—माता मेरे अभाग से सब लोग यह कह रहे हैं, कि मंझली मां ने मंथरा से संदेशा कहलाकर लड़कों को बनवास दिया, तो मैं अब बच्चों का क्या मुँह दिखाऊँ।

अरुधन्ती—बहू तुम सोच न करो। इसका भेद तुम्हारे गुरु जी ने समाधि से जान लिया है।

सब—क्या? क्या?

अरुन्धती—माल्यवान के कहने से शूर्पणखा ने मन्थरा का रूप धरके यह सब किया।

सब स्त्रियां—राक्षस भी बड़े ही पापी होते हैं, देखो—यहाँ तक कि स्त्रियों को भी दुःख देते हैं।

वसिष्ठ—अजी मंगल के समय अब क्या दुख की बात करती हो। राक्षसों की चढ़ाई की बात का यह कौन अवसर है।

(राम, लछमण, सीता, भरत, शत्रुघ्न, विभीषण आते हैं)

राम—(वसिष्ठ को देखकर हर्ष से) यही महात्मा वसिष्ठ जी हैं।

जाके पावन दरसतें मो मन द्रवत विशेषि।
चन्द्रकांत मनि के सरिस राका ससि कहँ देखि॥

(लछमण से) भैया यहां आओ।

राम और लछमण—गुरु जी राम लछमण तुमको दंडवत करते हैं।

वसिष्ठ—खुले ज्ञान के नयन तव निज अवसर पाय।
राजनीत और धर्मरत रहो इनहूँ भाय।

(राम लछमण अरुन्धती को प्रणाम करते हैं)

अरुन्धती—तुम्हारी मनोकामना पूरी हो।

(राम और लछमण क्रमशः सब माताओं को प्रणाम करते हैं)

सब माता—(लड़कों को गले लगा के) जियो बेटा।

(सीता आगे बढ़के वसिष्ठ को प्रणाम करती हैं)

वसिष्ठ—बेटी, तुम वीरों की माता हो।

(सीता अरुन्धती को प्रणाम करती हैं)

अरुन्धती—(सीता को गले लगाकर) बेटो, अब तक लोपा

मुद्रा, अनुसूया और हम यह तीन ही पतिव्रता, संसार में कही जाती थीं। तुम्हारे होने से चार हो गईं।

(सीता सासों के पैर छूती हैं)

सब—वह तुम्हारे सपूत लड़का हो।

(परदे के पीछे)

उत्सव घर-घर आय करै सब प्रजा समाजा।
सावधान अधिकारि करैं सब निज-निज काजा॥
द्विज अभिषेक निमित्त विधान सकल करि राखैं।
मुनि कृशाश्व के शिष्य कुशिकनन्दन यह भाखैं॥

वसिष्ठ—(सुनकर) भैया भी कैसा भाग्यवान् है जिसको सिंहासन पर वैठाने को विश्वामित्र जी आप आ रहे हैं।

और सब—बहुत अच्छी बात है।

(विश्वामित्र शिष्यों के साथ आते हैं)

(वसिष्ठ और विश्वामित्र एक दूसरे से मिलते हैं)

विश्वामित्र—महात्मा मैत्रावरुणी! अब किसका आसरा देख रहे हो।

वसिष्ठ—कुछ नहीं, लोकरीति कीजिए।

विश्वामित्र—(ऋषियों से) चलो रामचन्द्र का अभिषेक कर दो।

(सब बाहर जाते हैं)

[स्थान अयोध्या राज मंदिर]

कृतकृत्य भे सुर, राजबन्धन सहित तुम अपनी लहो।
जो होय यहि सन अधिक सो कल्यान तुम हम सन कहो॥

राम—इससे अधिक और क्या हो सकता है? तो भी आपके प्रसाद यह हो कि,

आलस छोड़ महीप सबै यहि देश की नित्य करैं रखवारी।
औसर पर बरसै जल······सों लोक बचै सब होय सुखारी॥
पाय प्रसाद करैं रचना कवि लोक प्रमोद के हेत विचारी।
पंडित हूँ सुख पावैं सदा करके नित ग्रन्थ प्रबन्ध विहारी॥

उद्धरणी

१—'रामराज्याभिषेक' शीर्षक किस समय का है?

२—पाठ में आये हुए वसिष्ठ और विश्वामित्र का परिचय दो।

३—कपीस, मनोकामना, लंकेश, राज्याभिषेक और ब्रह्मानन्द शब्दों में सन्धिविच्छेद कर सन्धियों के नाम बताओ।

४—निम्न शब्दों का अर्थ कर वाक्यों में प्रयोग करो :—
प्रमोद, महीप, अभिषेक, नेपथ्य और राकाससि।

५—इस पाठ का सारांश अपनी भाषा में लिखो।